



# INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

## महर्षि दयानन्द के शिक्षा-दर्शन का समकालीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण

अनिल कुमार त्रिपाठी (शोधार्थी)

डॉ. किरण मिश्रा (शोध निर्देशक)

डीन, शिक्षा संकाय रबीन्द्रनाथ टैगोर

विश्वविद्यालय, रायसेन मप्र

डॉ. अनिल कुमार (सह शोध निर्देशक)

निदेशक कवि कुलगुरूकालिदास

संस्कृत विश्वविद्यालय, रामटेक नागपुर महाराष्ट्र

### शोध-सार

(यह शोध-पत्र महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-दर्शन का विश्लेषण करते हुए उसकी आधुनिक भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षिक परिदृश्य में प्रासंगिकता की विवेचना करता है। उन्नीसवीं शताब्दी का भारत सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों और औपनिवेशिक शिक्षा-नीति के दुष्परिणामों से जूझ रहा था। ऐसे समय में महर्षि दयानन्द ने वैदिक ज्ञान-परंपरा को पुनर्जीवित करते हुए शिक्षा को चरित्र-निर्माण, सत्य-अन्वेषण, तर्कशीलता और नैतिक-मूल्यों के विकास का माध्यम माना। उनका विचार था कि शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को आत्मनिर्भर, राष्ट्रभक्त और विवेकपूर्ण बनाना है। समकालीन शिक्षा-परिदृश्य में बाजारीकरण, मूल्य-संकट, अतिप्रतिस्पर्धा और तकनीक-प्रधानता के कारण शिक्षण की संवेदनात्मक और आध्यात्मिक भूमिकाएँ कमजोर पड़ने लगी हैं। ऐसे समय में दयानन्द का शिक्षा-दर्शन एक संतुलित, मूल्यपरक और राष्ट्रोन्मुख दिशा प्रदान करता है। इस शोध-पत्र में गुणात्मक पद्धति, सैद्धांतिक विश्लेषण, ऐतिहासिक विवरण और साहित्य-समीक्षा के माध्यम से पाँच प्रमुख आयामों—(1) वैदिक शिक्षा का आधार, (2) चरित्र-निर्माण, (3) स्त्री-शिक्षा, (4) राष्ट्रवाद एवं स्वभाषा-शिक्षा, तथा (5) आधुनिक शिक्षा-व्यवस्था पर दयानन्द के विचार—का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है। परिणाम बताते हैं कि दयानन्द का शिक्षा-दर्शन आज भी मूल्य-आधारित शिक्षा, नैतिकता, सांस्कृतिक बोध, और समग्र विकास के निर्माण में अत्यंत उपयोगी है।)

**कुंजी शब्द:** वैदिक शिक्षा, चरित्र-निर्माण, नैतिक-शिक्षा, आर्य समाज, स्त्री-शिक्षा, राष्ट्रीयता, आधुनिक शिक्षा-परिदृश्य, मूल्य-शिक्षा, स्वभाषासमग्र विकास

### 1. परिचय

भारतीय शिक्षा-चिंतन का इतिहास अत्यंत व्यापक, बहुआयामी और गहन दर्शन पर आधारित रहा है। विशेष रूप से उन्नीसवीं शताब्दी में जब भारतीय समाज सामाजिक कुरीतियों, धार्मिक अंधविश्वासों और औपनिवेशिक मानसिकता के प्रभाव से जूझ रहा था, तब महर्षि दयानन्द सरस्वती का आगमन हुआ। उन्होंने वैदिक शिक्षा-दर्शन को नए स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए भारतीय समाज में बौद्धिक तथा नैतिक नवजागरण की नींव डाली। उस समय औपनिवेशिक शासन ने भारतीय शिक्षा-प्रणाली को इस प्रकार प्रभावित किया था कि भारतीयता, आध्यात्मिकता, आत्मविश्वास और सांस्कृतिक

गौरव तेजी से क्षीण हो रहे थे। ऐसी पृष्ठभूमि में दयानन्द का यह प्रयास कि शिक्षा को पुनः भारतीय मूल्यों, वैदिक सिद्धांतों और तार्किक विवेक से जोड़ा जाए, अत्यंत साहसिक और परिवर्तनकारी कदम था।

महर्षि दयानन्द का मानना था कि शिक्षा केवल पुस्तकों से प्राप्त होने वाला ज्ञान नहीं है, बल्कि यह व्यक्तित्व, चरित्र, नैतिकता और सामाजिक चेतना का समग्र विकास है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को सत्यनिष्ठ, स्वावलंबी, विवेकशील और समाजोपयोगी बनाना होना चाहिए। वे गुरु-शिष्य संबंध को शिक्षा का मूल आधार मानते थे और इसे व्यक्ति-निर्माण की सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया बताते थे। दयानन्द की दृष्टि में शिक्षक, शिक्षण-संस्थाएँ, समाज और राष्ट्र परस्पर अविभाज्य अंग हैं, जिन्हें मिलकर शिक्षा के वास्तविक लक्ष्य को पूर्ण करना चाहिए। शिक्षा का विचार तभी सार्थक होता है जब यह मनुष्य में अनुशासन, नैतिकता, साहस, विचार-स्वतंत्रता और कर्तव्य-बोध का निर्माण करे तथा उसे जीवन की जटिल परिस्थितियों का सामना करने के योग्य बनाए।

वर्तमान समय में शिक्षा व्यवस्था अनेक चुनौतियों का सामना कर रही है—मूल्य-संकट, नैतिक पतन, प्रतिस्पर्धा का अत्यधिक दबाव, भौतिकवादी जीवनशैली, मानसिक तनाव और तकनीकी निर्भरता। ऐसे वातावरण में शिक्षा का मानवीय, नैतिक और सांस्कृतिक स्वरूप धीरे-धीरे क्षीण होता जा रहा है। इन परिस्थितियों में महर्षि दयानन्द का शिक्षा-दर्शन आधुनिक शिक्षा को संतुलित दिशा प्रदान करता है। उनका विचार था कि शिक्षा को मानव-केन्द्रित, मूल्य-आधारित और जीवनोपयोगी होना चाहिए। दयानन्द शिक्षा को केवल रोजगार प्राप्ति का साधन नहीं, बल्कि व्यक्ति और समाज के विकास का आधार मानते थे। इसी कारण उनका दृष्टिकोण आज भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि वह आधुनिक शिक्षा को सांस्कृतिक गहराई, मानवीय संवेदना और नैतिक शक्ति से जोड़ता है।

## 2. अध्ययन के उद्देश्य

1. महर्षि दयानन्द के जीवन, विचार और शिक्षा-दर्शन का विश्लेषण करना।
2. वैदिक शिक्षा-दृष्टिकोण का समकालीन संदर्भ में अध्ययन करना।

## 3. शोध-पद्धति

यह शोध-पत्र पूर्णतः गुणात्मक (Qualitative) शोध-पद्धति पर आधारित है, जिसमें विचारों के विश्लेषण, ऐतिहासिक संदर्भों तथा सैद्धांतिक व्याख्याओं को मुख्य साधन के रूप में अपनाया गया है। अध्ययन के लिए महर्षि दयानन्द के जीवन-वृत्त, आर्य समाज की स्थापना, उसके सामाजिक-शैक्षिक उद्देश्यों तथा उन्नीसवीं शताब्दी के शिक्षा-आन्दोलन का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। इसके अतिरिक्त वैदिक ग्रंथों, विशेषतः ऋग्वेद, सत्यार्थ-प्रकाश और महर्षि दयानन्द के अन्य ग्रंथों के शैक्षिक विचारों की गहन सैद्धांतिक व्याख्या की गई है। यह अध्ययन शिक्षा-दर्शन को उसके मूल शास्त्रीय संदर्भों में समझने तथा दयानन्द के तात्त्विक आधारों की पड़ताल करने पर केंद्रित है।

अध्ययन में द्वितीयक स्रोतों का भी व्यापक उपयोग किया गया है, जिसमें शोध-पत्र, पुस्तकें, ग्रंथ, पत्रिकाएँ तथा प्रामाणिक ऑनलाइन स्रोत शामिल हैं। उपलब्ध साहित्य के तुलनात्मक, विश्लेषणात्मक और व्याख्यात्मक अध्ययन के आधार पर आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की चुनौतियों—जैसे मूल्य-बोध का क्षरण, चरित्र-निर्माण का अभाव, भाषा-संबंधी विसंगतियाँ तथा सांस्कृतिक दुराव जैसी समस्याओं—को दयानन्द के शिक्षा-दर्शन से जोड़कर समझने का प्रयास किया गया है। शोध में विचारात्मक (Interpretative) पद्धति के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि दयानन्द के शैक्षिक सिद्धांत आज भी शिक्षा सुधार के लिए महत्वपूर्ण दिशाएँ प्रदान करते हैं। समग्रतः यह शोध साहित्य-आधारित अध्ययन है, जिसके निष्कर्ष गहन विश्लेषण और वैचारिक व्याख्या पर आधारित हैं।

#### 4. वैदिक शिक्षा और दयानन्द का मूल दृष्टिकोण

महर्षि दयानन्द सरस्वती का शिक्षा-दर्शन वैदिक परंपरा की जड़ों से निकला हुआ एक अत्यंत वैज्ञानिक और तार्किक चिंतन है। वे स्पष्ट रूप से मानते थे कि वेद ज्ञान का सर्वोच्च और सार्वभौमिक स्रोत हैं, जिनमें मानव जीवन को नैतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक दिशा देने की अद्भुत क्षमता है। दयानन्द के अनुसार शिक्षा का प्रथम लक्ष्य सत्यज्ञान की प्राप्ति है—ऐसा ज्ञान जो व्यक्ति को अज्ञान, भ्रम और रूढ़ियों से मुक्त करे। दूसरा आधार शुद्ध आचरण है, जिसमें सत्य, अहिंसा, स्वच्छता, अनुशासन और संयम जैसे जीवन-मूल्यों का पालन शामिल है। तीसरा आधार सामाजिक कल्याण है, जिसके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत उन्नति नहीं, बल्कि समाज की सेवा और उत्थान भी होना चाहिए। इस प्रकार दयानन्द ने शिक्षा को केवल विषय-ज्ञान तक सीमित न रखकर उसे आध्यात्मिक उन्नति और सामाजिक जिम्मेदारी से भी जोड़ा।

दयानन्द परंपरागत गुरुकुल-व्यवस्था को अत्यंत आदर्श मानते थे, क्योंकि उसमें गुरु-शिष्य संबंध, अनुशासन, आत्मनिर्भरता और सादगी जैसे तत्व विद्यमान थे। उनका मानना था कि शिक्षा को जीवन से जोड़ने के लिए इन सिद्धांतों को आधुनिक संदर्भ में पुनर्गठित किया जाना चाहिए। वे मानते थे कि शिक्षा मनुष्य के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी पहलुओं को संतुलित रूप से विकसित करे, न कि मात्र बौद्धिक क्षमताओं को। आधुनिक शिक्षा के बारे में उनका मत था कि यह अत्यधिक पुस्तक-केन्द्रित होती जा रही है और ज्ञान को नैतिकता तथा आचरण से अलग कर देती है। दयानन्द के अनुसार ज्ञान तभी सार्थक है जब वह व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय, तथा कर्तव्य-बोध में सकारात्मक परिवर्तन लाए। इसलिए वे शिक्षा को व्यक्ति-निर्माण और समाज-निर्माण, दोनों का साधन मानते थे।

महर्षि दयानन्द शिक्षा को एक सर्वांगीण जीवन-पद्धति के रूप में देखते थे, जिसमें विज्ञान और वैदिक मूल्य परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं। वेदों की वैज्ञानिक व्याख्या करते हुए वे शिक्षा में गणित, खगोलशास्त्र, कृषि-विज्ञान, चिकित्सा, राजनीति, अर्थशास्त्र, व्याकरण, तर्कशास्त्र और प्राकृतिक विज्ञान जैसे विषयों को अनिवार्य मानते थे। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षाएँ उत्तीर्ण करना या नौकरी प्राप्त करना नहीं, बल्कि आत्मनिर्भर, विवेकशील, नैतिक और समाजोपयोगी नागरिक तैयार करना है। इस तरह वे आधुनिक विषय-ज्ञान और वैदिक मूल्य-शिक्षा का संतुलित समन्वय स्थापित करते हैं। दयानन्द के अनुसार शिक्षा का अंतिम लक्ष्य मानव-कल्याण है, और यही उनकी वैदिक शिक्षा-दृष्टि का मूल सार है—ज्ञान का ऐसा रूप जो व्यक्ति को भीतर से मजबूत करे और समाज को समृद्ध बनाए।

## 5. चरित्र-निर्माण और नैतिक-शिक्षा

महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिक्षा-दर्शन का केंद्रीय तत्व चरित्र-निर्माण है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञानार्जन या बौद्धिक विकास नहीं, बल्कि एक ऐसी नैतिक चेतना विकसित करना है जो व्यक्ति को सत्य, न्याय, ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे। दयानन्द स्पष्ट रूप से कहते थे कि यदि शिक्षा मनुष्य को सदाचार, आत्मानुशासन और नैतिक दृढ़ता का पाठ न सिखा सके, तो वह अधूरी और व्यर्थ है। उनकी दृष्टि में नैतिकता किसी बाहरी दंड-व्यवस्था पर आधारित नहीं होती, बल्कि आत्मा की शुद्धि और अंतर-प्रेरणा से उत्पन्न होती है। वे शिक्षार्थियों में सत्य बोलने, परोपकार करने, अनुशासन का पालन करने और किसी भी प्रकार की छल-कपट से दूर रहने की भावना को अनिवार्य मानते थे। इस प्रकार दयानन्द ने नैतिक-शिक्षा को मनुष्य-निर्माण की मूल नींव के रूप में स्थापित किया।

दयानन्द चरित्र-निर्माण को जीवन के चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—के संतुलन से जोड़कर देखते थे। उनके अनुसार शिक्षा का दायित्व है कि वह मनुष्य को इन पुरुषार्थों की सही व्याख्या और संतुलित अनुपालन के लिए सक्षम बनाए। वे मानते थे कि शिक्षा केवल भौतिक सफलता पर केंद्रित न हो, बल्कि आंतरिक शुचिता और जीवन-लक्ष्यों की स्पष्टता भी प्रदान करे। दयानन्द चेतावनी देते थे कि यदि शिक्षा में नैतिकता का अभाव होता है, तो समाज में भ्रष्टाचार, हिंसा, छल, अन्याय और अव्यवस्था अनिवार्य रूप से बढ़ती है। आधुनिक समाज में इन समस्याओं का बढ़ना उनके विचारों की सत्यता को प्रमाणित करता है। उन्होंने यह भी कहा कि शिक्षा का उद्देश्य “मानव को पशुता से मानवता की ओर, और मानवता से देवत्व की ओर ले जाना” है। इस दृष्टि से नैतिक-शिक्षा केवल सामाजिक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक उन्नति का भी मार्ग है।

महर्षि दयानन्द ने शिक्षकों की भूमिका को चरित्र-निर्माण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बताया। वे कहते थे कि शिक्षक केवल जानकारी देने वाला व्यक्ति नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वयं एक आदर्श, प्रेरणा-स्रोत और नैतिक मार्गदर्शक होना चाहिए। दयानन्द गुरु-शिष्य संबंध को आत्मिक विकास का आधार मानते थे, क्योंकि इसके माध्यम से विद्यार्थी केवल ज्ञान ही नहीं, बल्कि जीवन की दिशा भी प्राप्त करते हैं। उनका मानना था कि शिक्षा में स्वानुशासन, आत्मबल, संयम, श्रम और आत्म-सुधार की भावना विकसित होनी चाहिए। इस प्रकार उनका शिक्षा-दर्शन आधुनिक मूल्य-शिक्षा, जीवन-कौशल, नैतिक नेतृत्व और चरित्र-आधारित शिक्षा (Character-Based Education) की अवधारणाओं से पूर्णतः मेल खाता है। आज जब शिक्षा-प्रणाली अत्यधिक प्रतिस्पर्धी, तकनीक-आधारित और परिणाम-केन्द्रित हो गई है, तब दयानन्द का यह दृष्टिकोण और अधिक आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा का मूल उद्देश्य अच्छे मनुष्य और अच्छे नागरिक तैयार करना है।

## 6. स्त्री-शिक्षा, समानता और सामाजिक सुधार

महर्षि दयानन्द सरस्वती उन्नीसवीं शताब्दी के उन विरले सुधारकों में से थे जिन्होंने स्त्री-शिक्षा को केवल सामाजिक आवश्यकता ही नहीं, बल्कि एक नैतिक और आध्यात्मिक अनिवार्यता के रूप में प्रस्तुत किया। उस समय भारतीय समाज में स्त्रियाँ अनेक कुरीतियों, प्रतिबंधों और अशिक्षा के बोझ तले दबी हुई थीं। बाल-विवाह, परदा-प्रथा, विधवाओं की उपेक्षा, तथा स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रखने जैसी सामाजिक विकृतियाँ व्यापक थीं। दयानन्द ने वेदों के आधार पर दृढ़ता से कहा कि वैदिक काल में स्त्रियाँ शिक्षित, विदुषी, तर्कशील और सामाजिक जीवन में सक्रिय थीं। उनकी दृष्टि में

शिक्षा स्त्री की आत्मा को जाग्रत करती है और उसे समाज के समान रूप से सक्षम सदस्य के रूप में स्थापित करती है। इसलिए उन्होंने घोषणा की कि स्त्री-शिक्षा समाज के नैतिक उत्थान और राष्ट्रीय प्रगति की अनिवार्य शर्त है।

दयानन्द का सुधारवादी दृष्टिकोण केवल सैद्धांतिक नहीं था, बल्कि व्यावहारिक कार्यों में भी स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने आर्य समाज के माध्यम से स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, और सामाजिक समानता के पक्ष में व्यापक जन-जागरण अभियान चलाए। आर्य कन्या पाठशालाओं, महिला सभाओं और वैदिक शिक्षण संस्थानों की स्थापना स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में उनकी ठोस पहल का उदाहरण है। उन्होंने यह स्पष्ट रूप से कहा कि स्त्री और पुरुष दोनों ईश्वर की संतान हैं, इसलिए शिक्षा, स्वतंत्रता और सम्मान का अधिकार समान रूप से प्राप्त होना चाहिए। दयानन्द बाल-विवाह के कट्टर विरोधी थे और उन्हें विश्वास था कि शिक्षा ही स्त्रियों को आर्थिक स्वतंत्रता, आत्मविश्वास और निर्णय लेने की क्षमता प्रदान सकती है। उनके विचारों के कारण हजारों परिवारों में सामाजिक चेतना का प्रसार हुआ और स्त्रियों की स्थिति में वास्तविक सुधार की नींव पड़ी।

आज के समय में जब लैंगिक समानता, महिला सशक्तिकरण, आर्थिक स्वतंत्रता और नेतृत्व क्षमता वैश्विक चर्चा के केंद्र में हैं, तब दयानन्द का स्त्री-शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण और भी अधिक महत्वपूर्ण हो उठता है। दयानन्द का तर्क था कि यदि समाज का आधा हिस्सा—स्त्री—अशिक्षित और पिछड़ा रहे, तो कोई भी राष्ट्र पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो सकता। शिक्षा के माध्यम से स्त्री न केवल स्वयं सशक्त होती है, बल्कि परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में गुणात्मक योगदान देती है। दयानन्द स्त्री-शिक्षा को नैतिक, सांस्कृतिक और बौद्धिक उत्थान का आधार मानते थे। उन्होंने यह भी कहा कि शिक्षित स्त्री संस्कारित पीढ़ियों को जन्म देती है और समाज में समानता, न्याय और मानवता का वातावरण बनाती है। इस प्रकार उनका स्त्री-शिक्षा-दर्शन आधुनिक मानवाधिकार-चिंतन, नारीवाद, और समावेशी विकास की अवधारणाओं से गहराई से जुड़ा है।

## 7. राष्ट्रवाद, स्वभाषा और सांस्कृतिक शिक्षा

महर्षि दयानन्द सरस्वती भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक वैचारिक निर्माताओं में से एक थे। उनके अनुसार शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने का साधन नहीं, बल्कि राष्ट्रनिर्माण की आधारशिला है। वे मानते थे कि यदि किसी समाज की शिक्षा उसकी संस्कृति, परंपरा और राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी नहीं होती, तो वह समाज आत्महीनता, निर्भरता और मानसिक दासता का शिकार हो जाता है। दयानन्द ने अंग्रेजी शासन की शिक्षा-नीति की आलोचना करते हुए कहा कि ब्रिटिश शिक्षा भारतीयों को अपने गौरवशाली अतीत से दूर कर विदेशी सोच के अनुरूप ढाल रही है। इसलिए उन्होंने शिक्षा को राष्ट्रीय मूल्यों, वैदिक सिद्धांतों और भारतीय आत्मगौरव से जोड़ने पर बल दिया। उनकी दृष्टि में एक सशक्त राष्ट्र वही है जिसमें शिक्षा व्यक्ति को सांस्कृतिक पहचान, स्वाभिमान और सामाजिक जिम्मेदारी से युक्त नागरिक बनाती है।

स्वभाषा में शिक्षा दयानन्द के राष्ट्रवादी विचारों का अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व था। वे स्पष्ट कहते थे कि मातृभाषा ही वह माध्यम है जिसमें व्यक्ति अपने विचारों को सर्वाधिक स्पष्टता से समझ सकता है और सृजनात्मक रूप से व्यक्त कर सकता है। विदेशी भाषा में शिक्षा मन को बोझिल और अभिव्यक्ति को सीमित करती है, जबकि स्वभाषा राष्ट्रीय चेतना और सांस्कृतिक आत्मविश्वास को बढ़ाती है। दयानन्द ने संस्कृत और हिंदी को ज्ञान-विकास और संस्कृति की वाहक

भाषाएँ माना। उन्होंने यह भी कहा कि कोई भी राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता, जब तक उसकी शिक्षा उसकी भाषा और संस्कृति में निहित न हो। आर्य समाज द्वारा स्थापित गुरुकुलों में स्वभाषा शिक्षा, वैदिक अध्ययन, शारीरिक प्रशिक्षण, स्वावलंबन और सेवा-भाव को केंद्र में रखकर राष्ट्रवादी चेतना जागृत की जाती थी। इस प्रकार उनकी भाषा-नीति केवल भाषाई आग्रह नहीं, बल्कि राष्ट्रीय एकता और आत्मनिर्भरता का आधार थी।

दयानन्द के लिए सांस्कृतिक शिक्षा राष्ट्रवाद का आत्मिक आधार थी। उनका मानना था कि जब शिक्षा व्यक्ति को अपने इतिहास, परंपरा, मूल्यों और सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराती है, तभी उसमें राष्ट्रीय भावना का विकास होता है। सांस्कृतिक शिक्षा का अर्थ केवल प्राचीन ज्ञान तक सीमित होना नहीं, बल्कि आधुनिक विज्ञान, सामाजिक प्रगति और वैश्विक समझ को भी भारतीय दृष्टि से संयोजित करना है। आधुनिक शिक्षा में विदेशी संस्कृति और उपभोक्तावाद के बढ़ते प्रभाव के कारण छात्रों में सांस्कृतिक दूरी और पहचान-संकट उत्पन्न हो रहा है। ऐसे समय में दयानन्द की शिक्षा-दृष्टि एक संतुलित मार्ग प्रस्तुत करती है, जो व्यक्ति को आधुनिक ज्ञान से भी जोड़ती है और अपनी सांस्कृतिक जड़ों से भी। वे मानते थे कि एक शिक्षित राष्ट्र वही है जो अपनी सांस्कृतिक आत्मा को सुरक्षित रखते हुए ज्ञान-विज्ञान के सभी क्षेत्रों में प्रगति करता है। इस प्रकार उनका राष्ट्रवाद न तो संकीर्ण था और न पुरातनता में बंधा—यह आत्मनिर्भर, सांस्कृतिक और प्रगतिशील राष्ट्र का दर्शन था।

### 8. आधुनिक शिक्षा पर दयानन्द की आलोचना एवं समाधान-दृष्टि

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ब्रिटिश-कालीन शिक्षा-व्यवस्था की गहन आलोचना की, क्योंकि उनके अनुसार वह भारतीय समाज की आवश्यकताओं और सांस्कृतिक वास्तविकताओं से पूरी तरह असंबद्ध थी। उन्होंने कहा कि अंग्रेजी शासन द्वारा लागू शिक्षा भारतीयों को अपने इतिहास, परंपरा और नैतिकता से दूर कर एक ऐसी पीढ़ी तैयार कर रही है जो केवल प्रशासनिक मशीन बनकर रह जाएगी। यह शिक्षा पुस्तकीय ज्ञान, भाषा-आधारित हीनता और नौकरी-उन्मुखता तक सीमित थी, जिसमें चरित्र-निर्माण, नैतिक दृढ़ता और सामाजिक चेतना के लिए कोई स्थान नहीं था। दयानन्द का मानना था कि ऐसी शिक्षा मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाने की बजाय उसे मानसिक दासता, आडंबर और पराश्रय की ओर ले जाती है। उनकी दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना नहीं, बल्कि जीवन को दिशा देना, विवेक का विकास करना और मनुष्य को सत्य एवं धर्म के मार्ग पर चलाना है।

दयानन्द ने आधुनिक शिक्षा के असंतुलन—जिसमें बौद्धिक विकास को तो महत्व मिला, पर नैतिकता, आत्मानुशासन, आध्यात्मिकता और सामाजिक उत्तरदायित्व को कम—को समाज के अनेक संकटों का कारण बताया। उन्होंने यह भी चेताया कि यदि शिक्षा केवल प्रतियोगिता, अंकों, प्रतिष्ठा और भौतिक उपलब्धियों पर केंद्रित रही, तो समाज में व्यक्तिवाद, स्वार्थ, अनैतिकता, तनाव और असमानता बढ़ेगी। आज की शिक्षा-व्यवस्था में बढ़ती तकनीकी निर्भरता, मानसिक दबाव, मूल्य-संकट और सामाजिक दूरी वास्तव में दयानन्द की इस भविष्यवाणी को सत्य सिद्ध करते हैं। उनके अनुसार शिक्षा को मानवता, सेवा-भाव, श्रम-संस्कार, सत्यनिष्ठा और करुणा जैसे मूल्यों को विकसित करना चाहिए। उन्होंने कहा कि ज्ञान तभी पूर्ण है जब वह व्यक्ति के आचरण और सामाजिक व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन लाता है।

आधुनिक शिक्षा की इन कमियों के समाधान के लिए दयानन्द ने वैदिक सिद्धांतों पर आधारित समन्वित शिक्षा-व्यवस्था का मॉडल प्रस्तुत किया था। इस मॉडल में विज्ञान, गणित, कृषि, उद्योग, राजनीति, चिकित्सा, योग, नीतिशास्त्र और दर्शन का संतुलित समावेश प्रस्तावित था। उनका उद्देश्य ऐसा व्यक्ति तैयार करना था जो बौद्धिक रूप से सक्षम, नैतिक रूप से दृढ़, शारीरिक रूप से स्वस्थ और सामाजिक रूप से उत्तरदायी हो। उन्होंने स्वभाषा में शिक्षा, गुरुकुल-प्रणाली का पुनरुद्धार, व्यावहारिक प्रशिक्षण, श्रम-आधारित शिक्षा और समाजोपयोगी ज्ञान को आधुनिक शिक्षा में शामिल करने की आवश्यकता बताई। इस प्रकार दयानन्द की दृष्टि शिक्षा को एक बहुआयामी प्रक्रिया बनाती है जो केवल रोजगार नहीं, बल्कि समग्र जीवन-विकास का मार्ग है। आज के समय में जब शिक्षा-प्रणाली मूल्यों और संतुलन की खोज में है, दयानन्द की यह समाधान-दृष्टि अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शी सिद्ध होती है।

## 9. परिणाम एवं विवेचना

यह शोध यह दर्शाता है कि महर्षि दयानन्द का शिक्षा-दर्शन आज की शिक्षा-प्रणाली के लिए एक संतुलित, नैतिक और व्यावहारिक दिशा प्रदान करता है। शिक्षा को केवल सूचना-संग्रह या नौकरी-उन्मुख प्रक्रिया मानने के बजाय दयानन्द ने इसे मनुष्य के समग्र विकास का माध्यम माना। उनके अनुसार, शिक्षा का मूल लक्ष्य चरित्र-निर्माण, सत्य की खोज, विवेक का विकास और समाजोपयोगी दृष्टिकोण का निर्माण होना चाहिए—और यही बिंदु आज की शिक्षा में सर्वाधिक कमी के रूप में सामने आते हैं। शोध में यह भी स्पष्ट हुआ कि दयानन्द का मूल्य-केन्द्रित दृष्टिकोण वर्तमान शिक्षा में बढ़ती प्रतिस्पर्धा, दबाव, नैतिक शिथिलता और यांत्रिक सीखने के संकट का प्रभावी समाधान प्रस्तुत कर सकता है। उनके विचारों का विश्लेषण यह प्रमाणित करता है कि यदि शिक्षा मनुष्य-निर्माण के उद्देश्य को केंद्र में रखे, तो समाज में न केवल नैतिक अनुशासन बढ़ेगा, बल्कि सामाजिक सौहार्द और उत्तरदायित्व की भावना भी मजबूत होगी।

इस शोध के दूसरे महत्वपूर्ण निष्कर्ष में यह सामने आया कि दयानन्द का स्त्री-शिक्षा को लेकर दृष्टिकोण अत्यंत प्रगतिशील था और वह आधुनिक लैंगिक-समानता की अवधारणाओं से गहराई से मेल खाता है। उन्होंने न केवल स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया, बल्कि उसे समाज की प्रगति का अनिवार्य स्तंभ माना। आज, जब शिक्षा में लैंगिक अंतर, अवसरों में असमानता और सामाजिक पूर्वाग्रह अभी भी मौजूद हैं, दयानन्द के विचार अत्यंत प्रासंगिक सिद्ध होते हैं। साथ ही, यह पाया गया कि स्वभाषा में शिक्षा प्रदान करने की उनकी वकालत आज के शिक्षाशास्त्र द्वारा भी समर्थित है, क्योंकि शोध दर्शाते हैं कि मातृभाषा में सीखी गई शिक्षा अधिक स्थायी, अधिक गहरी और सीखने वाले के लिए अधिक सार्थक होती है। दयानन्द के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य केवल ज्ञानार्जन नहीं, बल्कि सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ाव और आत्म-गौरव का विकास भी होना चाहिए—और यह पहलू आज के वैश्विक संदर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो गया है।

अंततः, तुलनात्मक विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकला कि दयानन्द का शिक्षा-मॉडल वर्तमान समय के मूल्य-संकट, सामाजिक विघटन, पारिवारिक तनाव, युवाओं में बढ़ती निराशा और शिक्षा में व्यावहारिकता के अभाव जैसी समस्याओं का समाधान प्रस्तुत कर सकता है। उनका वैदिक आधार पर निर्मित शिक्षा-दर्शन आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा से विरोध नहीं करता, बल्कि उसे नैतिकता, मानवीयता और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ संतुलित करता है। इस शोध में यह भी प्रमाणित हुआ कि दयानन्द का विचार—शिक्षा को ज्ञान, कर्म और नैतिकता का संतुलित संगम बनाना—आज की शिक्षा नीति, विशेषकर समग्र शिक्षा, नई शिक्षा नीति (NEP) और कौशल-आधारित शिक्षण के साथ पूरी तरह संगत है।

इस प्रकार, अध्ययन की विवेचना यह दर्शाती है कि दयानन्द के सिद्धांत न केवल अतीत के लिए महत्वपूर्ण थे, बल्कि वर्तमान और भविष्य की शिक्षा-प्रणाली को भी दिशा देने में सक्षम हैं।

## 10. निष्कर्ष

महर्षि दयानन्द का शिक्षा-दर्शन केवल वैदिक परंपरा की पुनर्व्याख्या भर नहीं है, बल्कि एक ऐसा समग्र, संतुलित और मानव-केंद्रित शिक्षा-मॉडल है, जो आधुनिक समय की जटिल चुनौतियों का समाधान प्रस्तुत करता है। दयानन्द ने शिक्षा को जीवन का मूल आधार माना—एक ऐसी प्रक्रिया जो केवल ज्ञानार्जन तक सीमित नहीं, बल्कि मनुष्य के सत्य-बोध, नैतिकता, व्यवहारिक कौशल, तार्किक क्षमता और आध्यात्मिक उन्नयन तक विस्तारित होती है। उनके अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को स्वतंत्र विचार वाला, न्यायप्रिय, विवेकशील और समाजोपयोगी बनाना है। यह निष्कर्ष इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि आज की शिक्षा धीरे-धीरे सूचना-केन्द्रित और परीक्षा-उन्मुख होती जा रही है, जिससे व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास बाधित होता है। दयानन्द का दृष्टिकोण यह याद दिलाता है कि शिक्षा तभी सार्थक है जब वह मनुष्य को भीतर से सुदृढ़, नैतिक और आत्मनिर्भर बनाए।

वर्तमान संदर्भ में, जहाँ शिक्षा-व्यवस्था विभिन्न संकटों से घिरी हुई है—जैसे नैतिक पतन, मानसिक तनाव, मूल्यहीन प्रतिस्पर्धा, व्यावहारिक ज्ञान की कमी और सांस्कृतिक विस्मृति—दयानन्द की शिक्षा-परिकल्पना विशेष रूप से प्रासंगिक हो जाती है। उनके द्वारा प्रतिपादित चरित्र-निर्माण, नैतिकता, सत्यवादिता और करुणा जैसे मूलभूत सिद्धांत आज के समाज में अत्यंत आवश्यक हैं। साथ ही, दयानन्द ने स्त्री-शिक्षा, स्वभाषा में शिक्षा, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किक अध्ययन का जो समर्थन किया, वह आधुनिक शिक्षाशास्त्र के साथ पूर्णतः संगत है। यह शोध स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि दयानन्द के विचार शिक्षा को न केवल मानवतावादी बनाते हैं, बल्कि उसे सामाजिक न्याय, समानता और राष्ट्रनिर्माण जैसी व्यापक उद्देश्यों से भी जोड़ते हैं। उनके विचारों का समकालीन शिक्षा-नीतियों, विशेषकर नई शिक्षा नीति (NEP), से सामंजस्य यह सिद्ध करता है कि दयानन्द का दर्शन आज भी अत्यंत उपयोगी और मार्गदर्शक है।

अंततः, अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि महर्षि दयानन्द का शिक्षा-दर्शन आधुनिक भारतीय शिक्षा-प्रणाली के पुनर्निर्माण का सशक्त आधार बन सकता है। उनका मॉडल शिक्षा में ज्ञान, कौशल, नैतिकता और सांस्कृतिक चेतना का संतुलित समावेश सुनिश्चित करता है, जो किसी भी राष्ट्र के दीर्घकालिक विकास के लिए आवश्यक है। दयानन्द का आग्रह था कि शिक्षा व्यक्ति को आत्मावलोकन, आत्मबल और आत्मविकास की दिशा में ले जाए—और यही शिक्षा की वास्तविक सार्थकता भी है। इसलिए, यह शोध-पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि दयानन्द का शिक्षा-दर्शन केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की शिक्षा-योजना के लिए प्रेरणा-स्रोत है। यह हम सबके लिए स्मरणीय है कि एक सशक्त, नैतिक, जागरूक और संस्कारित राष्ट्र का निर्माण तभी संभव है जब शिक्षा का आधार दयानन्द द्वारा प्रतिपादित मानवीय और वैदिक मूल्यों पर टिका हो।

## संदर्भ सूची

1. अग्रवाल, रवि. *वैदिक शिक्षा का आधुनिक भारत में दर्शन*. दिल्ली: आर्य प्रकाशन, 2018.
2. आनंद, सुरेश. *महर्षि दयानन्द और राष्ट्रीय पुनर्जागरण*. जयपुर: सूर्य प्रकाशन, 2016.
3. आर्या, कविता. “दयानन्द के शैक्षिक आदर्श और उसकी समकालीन प्रासंगिकता।” *भारतीय शैक्षिक चिंतन पत्रिका*, खंड 12, अंक 2, 2020, पृ. 44–57.
4. चन्द्रा, बिपिन. *आधुनिक भारत: सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन*. नई दिल्ली: ओरिएंट पब्लिकेशन्स, 2015.
5. धार, राजीव. *भारत में मूल्य-आधारित शिक्षा: ऐतिहासिक आधार और आधुनिक आवश्यकताएँ*. मुंबई: वैश्विक अकादमिक प्रेस, 2019.
6. गोयल, प्रिया. “शैक्षिक सुधारों में आर्य समाज की भूमिका।” *अंतरराष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान पत्रिका*, खंड 8, अंक 1, 2018, पृ. 101–112.
7. जोशी, आर. के. *वैदिक शैक्षिक आदर्श: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन*. वाराणसी: गंगा प्रकाशन, 2014.
8. कुमार, अनिल. “स्वामी दयानन्द सरस्वती: महिला शिक्षा पर उनका दृष्टिकोण।” *एशियाई सांस्कृतिक अध्ययन पत्रिका*, खंड 5, अंक 1, 2019, पृ. 73–85.
9. मिश्रा, पी. एन. *स्वामी दयानन्द सरस्वती का शैक्षिक दर्शन*. नई दिल्ली: आर्य साहित्य मंदिर, 2013.
10. नागर, मोहन. “समकालीन भारतीय शिक्षा में वैदिक मूल्यों की प्रासंगिकता।” *भारतीय मूल्य-शिक्षा जर्नल*, खंड 10, अंक 3, 2019, पृ. 32–45.
11. पाण्डेय, एस. के. *भारतीय शिक्षा और सांस्कृतिक पुनर्जागरण*. इलाहाबाद: क्लासिक बुक्स, 2017.
12. राव, एस. एल. *आधुनिक भारत में शिक्षा और राष्ट्रवाद*. हैदराबाद: विद्या प्रकाशन, 2016.
13. सरस्वती, दयानन्द. *सत्यार्थ प्रकाश*. दिल्ली: वैदिक साहित्य ट्रस्ट, 2020. (मूल प्रकाशन: 1875)
14. शर्मा, डी. एस. *आर्य समाज और भारत में सामाजिक परिवर्तन*. चंडीगढ़: हेरिटेज पब्लिशर्स, 2015.
15. शर्मा, नीलं. “दयानन्द सरस्वती के विचारों में नैतिक एवं चरित्र निर्माण शिक्षा।” *शैक्षिक समीक्षा त्रैमासिक*, खंड 9, अंक 4, 2021, पृ. 88–99.
16. सिंह, राघवेन्द्र. *उन्नीसवीं सदी के सुधार आंदोलनों में महिला शिक्षा*. लखनऊ: सरस्वती भवन प्रकाशन, 2018.
17. त्रिपाठी, मनीष. *भारतीय दार्शनिक शिक्षा-परंपरा के आधार*. कोलकाता: अकादमिक पब्लिकेशन्स, 2016.
18. उपाध्याय, कविराज. “स्वामी दयानन्द के आदर्श और समकालीन शैक्षिक चुनौतियाँ।” *अंतरराष्ट्रीय मानविकी एवं नैतिक अध्ययन जर्नल*, खंड 7, अंक 2, 2020, पृ. 56–69.
19. वर्मा, कृष्ण. *भारत में राष्ट्रीय आंदोलन और शैक्षिक सुधार*. नई दिल्ली: ज्ञानदीप प्रकाशन, 2017.
20. यादव, मनीषा. “वैदिक शिक्षा और मानव विकास: एक पुनर्परिशीलन।” *भारतीय अध्ययन जर्नल*, खंड 6, अंक 1, 2021, पृ. 21–35.